स्त्रियों की दशा–वैदिक साहित्य के संदर्भ में

शिवपूजन चौरसिया*

स्त्री वाची शब्दों जैसे–नारी, योषित्, वामा, वनिता, वधू, अबला, सीमन्तिनी आदि में अन्तर्निहित विशेषताएँ स्त्री के सामान्य गुणों की ओर संकेत करती हैं। इस प्रकार स्नेहातिशय, सेवापरायणता एवं शील स्त्री के सहज गुण हैं। इन्हीं गुणों के कारण वह समाज में प्रतिष्ठा अर्जित करती है। पूरे कुल या समाज को एक सूत्र में बाँधने वाली 'पुरन्ध्री' कहलाती है और उसके बिना लोकयात्रा निष्फल समझी जाती है।

पुरं कुलं दधातीति पुरन्ध्रिः। 'पुरन्ध्रिर्योषा'[1]
''नाना नारीं निष्फला लोकयात्रा''[2]

''स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु न विशेषोऽस्ति कश्चन''[3] इस युक्ति से स्त्रियों को घरों में लक्ष्मी के समान कहा गया है। अतएव 'श्री' तथा 'स्त्री' में कोई भेद नहीं है। सन्तानोत्पादन, सन्तान का पालन–पोषण, प्रतिदिन के अतिथि तथा मित्रादि के सत्कार रूपी लोक–व्यवहार के पालन के मुख्य साधन स्त्रियाँ ही हैं–

उत्पादनमपत्यस्य जातस्य परिपालनम्।
प्रत्यहं लोकयात्रायाः प्रत्यक्षं स्त्रीनिबन्धनम्।।[4]

वैदिक काल से लेकर आज तक हमारे लिए शिक्षा का अर्थ वह प्रकाश स्त्रोत है जो जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में हमारा मार्गदर्शन करता है। इतिहास बताता है कि भारत प्राचीन काल में वैभवशाली व गौरवमय देशों में रहा है, यहाँ की शिक्षाव्यवस्था सभ्यता, एवं संस्कृति का द्योतक है। इसकी नींव आध्यात्मिकता पर आधारित रही है। कल लोग यहाँ की शिक्षा, सभ्यता तथा संस्कृति से अत्यधिक प्रभावित होकर आते थे, और आज यह कैसी विडम्बना है कि हम अपने अस्तित्व को ही खो बैठे हैं। आज हम पहले विदेशी, बाद में भारतीय होते जा रहे हैं। अपनी शिक्षाव्यवस्था, परिस्थिति, आवश्यकताओं तथा सामाजिक दशा की अवहेलना करके विदेशी शिक्षाव्यवस्था से प्रभावित होते जा रहे हैं। आज हमारे देश के छात्र–छात्राएं दूसरे देशों में अध्ययन करने को अपना सौभाग्य मानने लगे हैं, जबकि हमारे यहाँ प्राचीन समय में विश्व के कोने–कोने से छात्र अध्ययन करने आते थे।

शोधच्छात्र संस्कृत विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर वि.वि. सागर (म.प्र.)

स्त्रियों को प्राचीन काल से ही शिक्षा का अधिकार था, परन्तु आज स्थिति बहुत अधिक संतोषजनक नहीं है। भारतीय साहित्य तथा संस्कृति के इतिहास में स्त्रियों का आध्यात्मिक स्वरूप विकृत नहीं हुआ है। आज भी स्त्रियां गृहस्वामिनी और अर्द्धांगिनी के रूप में ही मुख्य रूप से दिखाई देती हैं। ऋग्वैदिक काल में स्त्रियों की वैयक्तिक मर्यादा सुरक्षित थी। स्त्रियों को लौकिक एवं पारलौकिक दोनों ही क्षेत्रों में कल्याणकारी रूप में देखा जाता था। स्त्रियों की महत्ता को वैदिक संस्कृत साहित्य में मुक्तकंठ से वर्णित किया गया है। वैदिक वाड्.मय में लक्ष्मी, शक्ति, दुर्गा की श्रेणी में अदिति, इन्द्राणी, उषा, भारती, श्रद्धा आदि को स्थान दिया गया है तथा ये देवियाँ उनके तत्वों की अधिष्ठात्री देवी कही गयी हैं। इसमें सर्वशक्तिशाली अदिति की संतान आकाश, माता–पिता और समस्त देवता हैं।

वेदों में कहा गया है कि ब्रह्मचारिणी स्त्रियों का विवाह विद्वान् पुरुष से ही होना चाहिए साथ ही स्त्रियों के वैदुष्यपूर्ण व्यवहार एवं शिक्षा की भी चर्चा है। अथर्ववेद में कुमारियों के ब्रह्मचर्य जीवन तथा विद्या प्राप्ति का परिचय मिलता है, जिसके पश्चात् ही वे युवा पति प्राप्त करती थीं–**ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्**[5]। वेदों में बहुत सारे मन्त्रों की द्रष्टा विदुषी स्त्रियाँ हैं। स्त्रियों का पढ़ना अत्यन्तावश्यक था क्योंकि बिना पढ़े वे अग्निहोत्र नहीं कर सकती थी। सर्वप्रथम शिक्षा माता से ही आरम्भ होती थी। मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि बच्चा माता के गर्भ से ही शिक्षा ग्रहण करना आरंभ कर देता है।

अतः हम समझ सकते हैं कि कन्या का शिक्षित होना कितना आवश्यक है। हम समाज में एक पुरुष को शिक्षित करके केवल एक व्यक्ति विशेष को करते हैं, किन्तु एक स्त्री को शिक्षित करने का अभिप्राय है सम्पूर्ण परिवार और आने वाली पीढ़ियों को शिक्षित करना। अतः भारत में स्त्री शिक्षा की बहुत आवश्यकता है। परिवार, समाज और राष्ट्र के निर्माण में इतना अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान होने के बाद भी आधुनिक भारत की असंख्य स्त्रियाँ अशिक्षित हैं, उन्हें अक्षर ज्ञान भी नहीं है। शहरों में कुछ व्यवस्था हुई भी परन्तु गाँव में दशा बहुत ही विचारणीय है।

वर्तमान समय में घर से बाहर कन्या हो, माता हो या बहन हो, सभी स्त्रियाँ अपने आप को असुरक्षित पाती हैं। आज छोटी–छोटी बच्चियां तक दुष्कर्म और शोषण का शिकार हो रही है, जबकि वैदिक काल में इतने अमानवीय कृत्य देखने को नहीं मिले। आज स्त्रियों की सुरक्षा हेतु प्रयास निरंतर जारी रखने की आवश्यकता है। स्त्रियों के सम्मान में जो कमी आई है वह संस्कारों का अभाव ही जान पड़ता है। मनुस्मृति में मनु ने का है–

''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।।''[6]

अर्थात् जहाँ स्त्रियों का आदर किया जाता है वहाँ देवता रमण करते हैं और जहाँ स्त्रियों का अनादर होता है, वहाँ सभी कार्य निष्फल हो जाते हैं। ऐसी विचारधारा जहाँ है वहाँ स्त्रियों का अपमान तथा उनके साथ दुराचार असंभव है।

आज स्त्री की यह स्थिति है कि वह कहीं भी जाने में डरती है। वह स्वतंत्रता पूर्वक कहीं भी नहीं जा सकती, जबकि वैदिक काल में स्थिति ऐसी नहीं थी। स्त्रियाँ निर्भीक, साहसी, विदुषी तथा ब्रह्मवादिनी होती थीं। स्त्रियों के निश्चय, सद्विवेक एवं कार्य कुशलता पर ही उनकी शिक्षा का भविष्य निर्भर है। समाज उत्थान के कार्यों में स्त्रियों की सेवा प्राप्त करने के लिए उनका शिक्षित होना अत्यावश्यक है। समाज के अंतर्गत अनेक बुराइयाँ जैसे पर्दा–प्रथा, सती–प्रथा, जादू–टोना आदि को दूर करने में एक शिक्षित स्त्री का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। एक परिवार में माता को सर्वप्रथम अध्यापक कहा गया है, जिससे वह बालक को समुचित पथ प्रदर्शन करने में समर्थ हो सके। शिक्षा से ही स्त्रियां आत्मनिर्भर एवं स्वतंत्र हैं। तैत्तिरीयोपनिषद् शिक्षावल्ली अनुवाक–11 में गुरु अपने शिष्य और सामाजिक गृहस्थ को सद् आचरणों पर चलने की प्रेरणा देता है। वह कहता है–

''मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। अतिथिदेवो भव।''[7]

अर्थात् माता को, पिता को, आचार्य को और अतिथि को देवता के समान मानकर उनके साथ व्यवहार करो। यह भारतीय संस्कृति की उच्चता है कि यहाँ माता–पिता और गुरू तथा अतिथि को भी देवता के समान सम्मान दिया जाता है। मनुस्मृति में कहा गया है कि.....

''स्त्रियां तु रोचमानायां सर्वं तद्रोचते कुलम्।
तस्यां त्वरोचमानायां सर्वमेव न रोचते।।''[8]

स्त्री प्रसन्न है तो सारा कुल ही आनंदमय हो जाता है। पत्नि के रूप से नारी, पति, पुत्र तथा गृहस्थ की सुख–शान्ति की संरक्षिका मानी जाती है, इसलिये वेद नारी को जागरूक रहने का आदेश देता है। वेदों में नर रूप को जहाँ परम पुरुष कहा गया है वहीं नारी को आदिशक्ति परम चेतना कहा गया है।

भारतीय साहित्य में नारी के विभिन्न रूपों का निरूपण प्राप्त होता है। वैदिक युग में नारी का मानवीय स्थान रहा है। वैदिक युग में नारी सामाजिक, अध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक सभी प्रकार के कार्यों में भाग लेने में सक्षम एवं स्वतंत्र थी। मनुस्मृति में **''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता''**।[9] यह कहकर नारी के सम्मानीय पद की प्रशंसा की गयी है।

वैदिक युग में स्त्री का समाज में उच्च स्थान था। विद्या का आदर्श सरस्वती में, धन का आदर्श लक्ष्मी में, पराक्रम का आदर्श दुर्गा में, सौन्दर्य का आदर्श रति में, पवित्रता का आदर्श गंगा में, भगवान का आदर्श जगज्जननी में माना जाता

था। वेदों में नारी की स्थिति अत्यन्त गौरवास्पद वर्णित हुई है। वेद की नारी देवी है, विदुषी है, प्रकाश से परिपूर्ण है, वीरांगना है, वीरों की जननी है, आदर्श माता है, कर्त्तव्यनिष्ठ पत्नी है, सद्गृहणी है, सम्राज्ञी है, संतान की प्रथम शिक्षिका है, आचार्याणी बनकर कन्याओं को सदाचार और ज्ञान–विज्ञान की शिक्षा देने वाली है, गुरु बनकर सन्मार्ग बताने वाली है, मर्यादाओं का पालन करने वाली है, जग में सत्य और प्रेम का प्रकाश फैलाने वाली है। यदि स्त्री गुण कर्मानुसार क्षत्रिय है तो धनुर्विद्या में निष्णात होकर राष्ट्र रक्षा में भाग लेती है। यदि वैश्य कर्म है, तो उच्चकोटि के कृषि, पशुपालन, व्यापार आदि में योगदान देती है। वेदों की नारी पूज्य है, स्तुति योग्य है, रमणीय है, आह्वान योग्य है, सुशील है, बहुश्रम है, यशोमयी है।

धार्मिक कृत्यों सेवाशुश्रुषा, श्रेष्ठ रति तथा पितरों एवं अपने स्वर्ग आदि स्त्रियों के ही अधीन है –

अपत्यं धर्मकार्याणि शुश्रूषा रतिरुत्तमा।
दाराधीनस्तथा स्वर्गः पितृणां आत्मनश्च ह ।।[10]

स्त्री सृष्टि चक्र को चलाने के लिये अनिवार्य है। बृहादारण्यकोपनिषद् तथा मनुस्मृति में उल्लिखित है कि एकाकी प्रजापति ने अपने शरीर को दो भागों में विभक्त कर डाला, जिसमें स्त्री और पुरुष का विभाजन हुआ –

द्विधा कृत्वात्मनो देहमर्धेन पुरुषोऽभवत्।
अर्धेन नारी तस्यां स विराजमसृजत्प्रभुः।।[11]

एक ही शरीर के द्विधा विभाग होने के कारण स्त्री और पुरुष एक दूसरे के सम्पूरक हैं एक के अभाव में दूसरा अधूरा है।

''पुरुषो जायां कृत्वा कृत्स्नतरमिवात्मानं मन्यते''[12]
अर्धो ह व एष आत्मनः .....[13]

अतः वेदों में पुरुष और नारी के विषय में आलंकारिक वर्णन प्राप्त है। पुरुष दिन है तो नारी रजनी है। पुरुष प्रभात है तो नारी उषा है। पुरुष तरु है तो नारी लता है। पुरुष आदित्य है तो नारी प्रभा है। पुरुष सत्य है तो नारी श्रद्धा है। पुरुष धर्म है तो नारी धरिता है। पुरुष स्वाभिमान है तो नारी क्षमा है। इसी तथ्य को सर्वग्राह्य बनाने के लिए भगवान् शिव के अर्धनारीश्वर रूप की विधिवत् प्रतिष्ठा की गयी है–

प्रदीपरत्नोज्ज्वलकुण्डलायै, स्फुरन् महापन्नगभूषणाय।
शिवान्वितायै च शिवान्विताय, नमः शिवायै च नमः शिवाय।।[14]

वेदों में नारी को सम्मानजनक उच्च स्थान प्रदान करते हुए उनकी तुलना ब्रह्मा से की गयी है। ब्रह्मा स्वयं ज्ञान के अधिष्ठाता है। इसी प्रकार नारी स्वयं ज्ञानवान होते हुए अपनी संतान को भी सुशिक्षित बनाती है।

''स्त्री हि ब्रह्मा बभुविथ''।[15]

अर्थर्ववेद में नारी के सम्मान को वर्णित करने वाला श्लोक द्रष्टव्य है–

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु सम्मनाः।
जाया पत्ये मतुमतीं वाचं वददु भाान्तिवाम्।।[16]

अर्थात् पुत्र पिता के अनुकूल कर्मों को करने वाला हो और माता के प्रति सम्मान मन वाला होना चाहिए।

वेदकाल में स्त्री शिक्षा का पर्याप्त प्रचार था। गार्गी मैत्रेयी आदि स्त्रियों ने शास्त्रार्थ में पुरुषों को पराजित किया था। इससे सुस्पष्ट है कि तत्समय स्त्रियों को वेदाध्ययन हेतु उदारतापूर्वक प्रोत्साहित किया जाता था। कहीं–कहीं तो सहशिक्षा भी थी परन्तु यह सर्वत्र नहीं थी। अध्ययन कार्य में स्त्रियाँ पुरुषों के समान ही दक्षता प्राप्त करती थी। काव्य, संगीत, नृत्य तथा अभिनय आदि ललित कलाओं में वे बढ़–चढ़कर ज्ञान अर्जन करती थी।

हारीत संहिता के अनुसार स्त्रियाँ दो प्रकार की होती थी, जिन्हें ब्रह्मावादिनी और सद्योवाह कहा जाता था। ब्रह्मवादिनी यज्ञान्नि प्रज्जवलित करने, वेदाध्ययन करने तथा अपने ही घरों से भिक्षा मांगने की अधिकारिणी थी। प्रज्ज्वलित उच्च शिक्षा प्राप्त स्त्रियों में से कुछ आजन्म ब्रह्मचारिणी रहकर आध्यात्मिक उन्नति में लगी रहती थी, इन्हें ब्रह्मचारिणी कहा जाता था। अन्य स्त्रियां गृहस्थ धर्म का संचालन करती थी, किन्तु गृहस्थ आश्रम में प्रवेश लेने से पूर्व वे ब्रह्मचारिणी रहकर अध्ययन कर चुकी होती थी।

यजुर्वेद में स्त्री को ''स्तोमपृष्ठा'' कहा गया है। जिसका अभिप्राय यह है कि वह वेद मन्त्रों के विषय में पूछताछ करती थी। प्राचीनकाल में यज्ञों एवं धार्मिक अनुष्ठानों का बहुत महत्त्व था और व्यक्ति अपनी पत्नी के साथ ही यज्ञ कर सकता था, इसलिए स्त्रियों को विशेष रूप से वैदिक साहित्य की शिक्षा प्रदान की जाती थी ताकि वह धार्मिक क्रियाओं में अपने पति के साथ भाग ले सके। **'बृहदारण्यकोपनिषद्' में विदेह राज जनक की राजसभा में गार्गी और याज्ञवल्क्य के बीच वाद–विवाद का वर्णन मिलता है। जिसमें गार्गी ने अपनी अद्भुत प्रतिभा, विलक्षण तर्कशक्ति और सूक्ष्म विचार तन्तुओं से दुरूह प्रश्नों की बौछार करके याज्ञवल्क्य जैसे विद्वान् महापुरुष को भी मूक कर दिया था।**[17]

वैदिक कालीन स्त्रियाँ जहाँ एक ओर देवी, विदुशी, प्रकाश से परिपूर्ण, कर्तव्यनिष्ठ पत्नी, साम्राज्ञी, सन्तान की प्रथम शिक्षिका, आचार्याणी के रूप में है तो वहीं दूसरी ओर प्रेम, श्रद्धा, स्तुत्ययोग्य आदि के रूप में उनका परिचय मिलता है। पुत्र प्रेम का आदर्श स्वरूप हमें ऋग्वेद में दिखायी देता है।

नीचावया अभवद् वृत्रपुत्रेन्द्रो अस्या अव वधर्जभार।
उत्तरा सूरधरः पुत्र आसीद्दानुः शये सहवत्सा न धेनुः।।[18]

अर्थात् वृत्र की माता हाथों को नीचे किये हुए हो गयी। अर्थात् पुत्र की रक्षा के लिये हाथों को नीचे फैला लिया। तब इन्द्र ने इसके ऊपर 'आयुध' का प्रहार किया। उस समय माता ऊपर तथा पुत्र नीचे था। तब वह दानवी वृत्रमाता बछड़े के साथ गौ के समान मृत लेटी है।

वैदिक संस्कृत साहित्य में स्त्रियों के अधिकार की बात करें तो, पत्नी के यज्ञाधिकार का वेदों में असन्दिग्ध प्रमाण मिलते हैं वह अपने पति के साथ विविध प्रकार के यज्ञों में सक्रिय भाग लेती थी–

या दम्पती समनसा सुनुत आ च धावतः।
देवसो नित्यायाशिरा।।[19]

अर्थात् पति–पत्नी यजमान समान मन वाले होकर अभिशव करते है और छन्ने से सोम को छानकर उसमें गव्यादि का मिश्रण करते हुए मधुर बनाते हैं ।

मनु के अनुसार पुत्र अपनी ही आत्मा के समान होता है एवं पुत्री उस पुत्र के समान होती है,

अतएव आत्मा समान पुत्री के जीवित रहते हुए मृत पिता के धन को कोई अन्य कैसे ले सकता है–

यथैवात्मा तथा पुत्रः पुत्रेण दुहिता समा।
तस्यामत्मनि तिष्ठन्त्यां कथमन्यो धनं हरेत्।।[20]

नारद ने पुत्र के अभाव में कन्या को रिक्थाधिकार इस आधार पर दिया है कि वह पुत्र के समान ही पिता के कुल को चलाने वाली होती है।

पुत्राभावे तु दुहिता तुल्यसन्तानकारणात्।[21]

पुत्रहीन विधवा को मृत पति की सम्पत्ति का अधिकारी घोषित करने का श्रेय सर्वप्रथम याज्ञवल्क्य को जाता है। याज्ञवल्क्य की व्यवस्था अनुसार पुत्रहीन व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात् उसकी सम्पत्ति पर क्रमानुसार–पत्नी, कन्या, दौहित्र, माता, पिता, भाई, भाइयों के लड़के, गोत्रज, बन्धु, शिष्य एवं सहपाठी का अधिकार होता है–

पत्नी दुहितरश्चैव पितरो भ्रातरस्तथा।
तत्सुता गोत्रजा बन्धुशिष्यसब्रह्मचारिणः।।
एषामभावे पूर्वस्य धनभगुत्तरोत्तरः।
स्वर्यातस्य ह्यपुत्रस्य सर्ववर्णेष्वयं विधिः।।[22]

वैदिक संहिताओं से लेकर स्मृतिपर्यन्त नारी विशयक अवधारणाओं के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि वैदिक युग में भारतीय नारी की जो उत्कृष्ट स्थिति थी आज उसकी कल्पना भी सरलतया नहीं की जा सकती। तत्कालीन समाज में

उसे पर्याप्त स्वन्त्रता थी, उसका कार्यक्षेत्र संकुचित नहीं था, विधवा की स्थिति में उसे यातनापूर्ण जीवन बिताने अथवा सती होने के लिए बाध्य नहीं होना पड़ता था, उसका पूरा अधिकार था।

वस्तुतः वैदिक समाज में नारी का वही स्थान है जो कि शरीर में नाड़ी का है। जिस प्रकार नाड़ी की गति का तीव्र या मन्द हो जाना चिकित्साशास्त्र में अस्वास्थ्य का लक्षण माना जाता है, उसका सम्भाव में रहना ही श्रेयस्कर होता है उसी प्रकार नारी यदि समाजिक बन्धनों को तोड़कर चलने का प्रयास करती है अथवा अपने विचारों को कुण्ठित (अर्थात् स्व तक सीमित) करके मन्दगति का अनुसरण करती है तो यह दोनों स्थितियाँ वंश, समाज एवं राष्ट्र के पतन का कारण बन सकती है।[23] उसका 'गृहिणी' या 'पुरन्ध्री' रूप ही समाज की उन्नति का हेतु बनता है। नारी शील, स्नेह, वात्सल्य, ममता, त्याग आदि मानवीय गुणों की साक्षात् मूर्ति है और माँ, पत्नी, पुत्री, स्वसा (सास), स्नुषा (पुत्रवधू) जैसे सम्बन्धों का केन्द्र बिन्दु है। जब तक केन्द्र सुदृढ़ तथा समुन्नत नहीं होगा तब तक उसके सहारे खींचा गया (जीवन) वृत्त सार्थक नहीं हो सकता।

पी.एस. प्रभु ने अपनी पुस्तक ''हिन्दु सोशियल आर्गेनाइजेशन'' में लिखा है कि ''जहाँ तक शिक्षा का संबंध था स्त्रियों तथा पुरुषों में कोई भेद नहीं था और इस युग में दोनों की सामाजिक स्थिति समान रूप से महत्वपूर्ण थी।''ए एस. अल्तेकर के अनुसार ''स्त्रियाँ धर्म के मार्ग में बाधक नहीं थी। धार्मिक उत्सवों में पत्नी का सहयोग एवं उपस्थिति वांछनीय मानी जाती थी।''

वेद युगीन स्त्रियाँ, वैदिक वाङ्मय का विधिवत अध्ययन करती थी एवं यज्ञों में भाग लेकर मंत्रोच्चारण भी करती थी। वैदिक समाज में धर्म के नाम पर स्त्रियों के प्रति दुराचार नहीं किया जाता था। विवाह संस्कार सम्पन्न होने के बाद कन्याएँ अधिक सम्मान की पात्र हो जाती थी। प्रारम्भिक वेद युग में पत्नी ही यज्ञ में सोमगीतों का गान करती थी स्त्रियों को शिक्षा एवं साहित्य का अध्ययन करने की पुरुष के समान स्वतंत्रता थी। अतः वैदिक काल में स्त्रियों की दशा आधुनिक काल की अपेक्षा अधिक सन्तोष जनक कही जा सकती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. शुक्लयजुर्वेद
2. वर्धमानकृत ''गणरत्नमहोदधि''
3. मनुस्मृति – 9.26
4. वही– 9.27, बृहत्पराशर – 6.71
5. अथर्ववेद – 11.3, 15.18
6. मनुस्मृति – 3.56

7. तैन्तिरीयोपनिषद् – 1.11
8. मनुस्मृति – 3.62
9. वही – 3.56
10. वही – 9.28
11. वही – 1.34
12. ऐतरेय ब्राह्मण – 1.25
13. शतपथ ब्राह्मण – 5.2, 1.10
14. शंकराचार्य अर्धनारीश्वर स्तोत्र – 8
15. ऋग्वेद – 8.33.19
16. अथर्ववेद – 3.30.2
17. बृहदारण्यकोपनिषद् – अध्याय –3
18. ऋग्वेद – 1.32.9
19. वही – 8.31.5
20. मनुस्मृति – 9.130
21. नारद स्मृति – 16.13, 16.27, 13.50
22. याज्ञवल्क्यस्मृति – 1.135–136
23. श्रीमद्भगवद्गीता – 1.41, 42, 43, 44